IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 24, Issue 11, Series. 9 (November. 2019) 70-73
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

नागरिक समाज

डॉ0 राधिका देवी
विभागाध्यक्ष(राजनीति विज्ञान)
ए0के0पी0(पी0जी0) कॉलिज, खुर्जा
जिला–बुलन्दषहर (उ0प्र0)

बीसवीं सदीं में उदारवाद की आश्चर्यजनक विजय ने उसे 'लोकतन्त्र का युग' बना दिया, वर्तमान सदीं में उत्तर–उदारवाद की दिशा में उतना ही चमत्कारी परिवर्तन उजागर हो रहा है। अब 'सीमित राज्य के युग' में राजनीतिक व्यवस्था अगणित स्वायत्तशासी सामाजिक संस्थाओं व आन्दोलनों के बीच कार्य कर रही है जो नागरिक समाज को बनाए रखने वाली सक्रिय व जागरूक नागरिकता की विधा से एक–दूसरे को प्रबलित कर रहे हैं। **एक नए प्रकार की सामाजिक व्यवस्था उभर रही है जो यथासम्भव अधिकाधिक लोगों को राजनीतिक सहभाजिता तथा शासकों की शासितों के प्रति जबाबदेही को सुनिश्चित कर रही है।** अतः यह आवश्यक हो गया है कि लोगों के जीवन तथा उनकी सामाजिक व राजनीतिक संस्थाओं में राज्य के हस्तक्षेप के विषय में उसकी बेहतर एवं अधिक न्यायोचित भूमिका की पुर्नव्याख्या की जाएं। महत्वपूर्ण अर्थ में, यह उस शास्त्रीय सूक्ति का पुनः पुष्टिकरण करती है कि ''उदारवाद का कोई अपरिवर्तनीय स्वभाव या सार नहीं हैं, इसमें अनेक विशिष्ट लक्षणों का समुच्च निहित है जो इसकी आधुनिकता को दर्शाते हैं और साथ ही,उसे आधुनिक बौद्धिक परम्पराओं व उनसे सम्बद्ध लोक आन्दोलनों से भिन्न कर देते है।''[1]

प्रकृति(Nature)

अब राजनीतिक सिद्धान्त में राज्य के अर्थ ने एक नया मोड़ लिया है और एक दिशा जिसमें वह इतना महत्वपूर्ण हो गया है, वह है उसका समाज में प्रबुद्ध व सक्रिय वर्ग के साथ सम्बन्ध–ऐसा समाज जिसे 'नागरिक समाज' कहा जाता है। अतीत में इस पदबन्ध का प्रयोग अनेक समाजशास्त्रियों (जैसे–एडम स्मिथ, मांटेस्क्यु, हींगल, पेन व टॉकवेल) ने किया था किन्तु अब राज्य के समाज के साथ सम्बन्ध के सन्दर्भ में उसकी भूमिका की पुनर्व्याख्या के परिणामस्वरूप इसने अपना विशेष महत्व धारण कर लिया है। अब यह वृहत् स्तर पर लोक विवाद का विषय बन गया है जिसमें शिक्षाविदों, व्यावसायिक प्रबन्धकों तथा समाजवैज्ञानिकों को भागीदारी संलिप्त हो चुकी है। इसका कारण ''व्यक्ति बनाम राज्य' या 'राज्य बनाम समाज' के मुद्दे पर नये प्रकाश में देखा जा सकता है। अन्य शब्दों में, **इसकी पुनर्व्याख्या समाज वैज्ञानिकों के नये आग्रहों में निहित है जो राज्य की असीम सत्ताधारी प्रकृति को रोकने के लिए एक नया विकल्प प्रस्तुत करते हैं।** किसी समय बीसवीं सदीं के प्रमुख बहुलवादियों (जैसे–हॉबहाउस, मैकाइवर, बार्कर, लास्की व कोलू आदि) ने सामाजिक समूहों, संगठनों व आन्दोलनों की स्वायत्तता का समर्थन किया था, अब वहीं कार्य नए समाज वैज्ञानिक, जैसे–गेलनर (Gallner), कोहेन(Cohen), बोवियो(Bobbio), कीन(Keane), व पेल्सीज्रिन्सकी(Peleyzinski), कर रहे हैं।[2]

साधारण शब्दों में, नागरिक समाज दो ध्रुवों के बीच कहीं पर स्थित हैं–एक ओर राज्य जिसके पास वैध दमन की शक्ति है और दूसरी ओर अगणित स्वायत्तशासी सामाजिक समूह व संगठन जो उसके प्रति अपना आभार व्यक्त करते हैं बशर्ते कि वह उनके अस्तित्व व कार्य–संचालन को मिटाने की धमकी न दे। राज्य व समाज का क्षेत्र परस्पर सहगामी नहीं है। **वह क्षेत्र जहाँ समाज अपनी भूमिका निभाता है तथा उसके समूह व संघ अपने–अपने क्षेत्रों में क्रियाशील रहते हैं, वहीं नागरिक समाज की रचना होती है।** एक शास्त्रीय अर्थशास्त्री एडम स्मिथ ने पूँजीवादी समाजों में निजी आर्थिक क्रिया के सम्पूर्ण क्षेत्र को अभिव्यक्त करते हुए इस पदबन्ध का प्रयोग किया था, ''अब नागरिक समाज ने हर प्रकार के सामाजिक आदान–प्रदानों या स्वैच्छिक संघो को, चाहे वे अर्थिक हो या नहीं, अपने भीतर समाहित कर लिया है, बशर्ते कि ये राज्य द्वारा न कोषित हो, न पोषित।साथ ही, यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि राज्य व नागरिक समाज के बीच सीमा रखाएँ ''कभी सुनिश्चित नहीं हो सकतीं, वे लगातार रूप में बदलती रहती हैं।''[3]

यद्यपि, नागरिक समाज का विचार काफी पुराना है। पिछले कुछ समय में, विशेषकर बीसवीं सदीं के मध्य या पूर्वार्द्ध में प्राधिकारवादी व्यवस्थाओं के पतन के फलस्वरूप, यह प्रचलन में आ गया है। कल्याणकारी राज्य के प्रतिमान, जो 1950 व 1960 के दशकों में बहुत लोकप्रिय बना रहा, की सफलता के बारे में मोह भंग ने इस दिशा में अपना योगदान किया। अब विराष्ट्रीयकरण (de-nationalisation), व विविनियमीकरण (de-regulation), की नयी प्रवृत्ति ने इसे पुनः प्रवलित किया है जिसे विराज्यीकरण (de-statisation),भी कहा जा सकता है या जिसे नव–दामपक्षी 'राज्य का समेटन'(rolling back of state) कहते हैं। सकारात्मक शब्दावली में, इसने भूमण्डलीकरण(Globalisation) व उदारीकरण (liberalisation) की नयी प्रवृत्तियों में अपना स्थान बना लिया है जो निजीकरण या उन बाजारी शक्तियों के मुक्त होने के परिचायक हैं कि अब राज्य असंख्य सामाजिक क्षेत्रों में अपनी

हस्तक्षेपकारी भूमिका से पीछे हट रहा है। राज्य बाजार या निजी अर्थव्यवस्था का शत्रु नहीं है तथा अपने लोगों को मताधिकार या राजनीति से वंचित करना उसका मन्तव्य नहीं है। **उसे बाजार के प्रति मैत्रीपूर्ण रूख अपनाना चाहिए तथा उसे अपने नागरिकों को सामाजिक एवं राजनैतिक दृष्टि से सक्रिय बनाना चाहिए ताकि वे प्रशासनिक अनुक्रियाषीलता तथा शासकों की शासितों के प्रति जबाबदेही को सुनिश्चित कर सकें।** अन्य शब्दों में, नागरिक समाज का विचार राज्य की उपयोगिता को नहीं नकारता, जैसा अराजकतावादी करते हैं, किन्तु यह सर्वशक्तिमान राज्य के विचार को पूर्णतया अस्वीकार करता है जो कठोर रूप में सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्रों के बीच सीमा रेखा को धूमिल कर देता है। ''आधुनिक ससार में मजबूत नागरिक समाज के बिना कोई मुक्ति सम्भव नहीं है जो सार्वजनिक क्षेत्र को प्रबल बना सकता है तथा दानव–रूपी राज्य के प्रति विरोध का केन्द्र प्रस्तुत कर सकता है।''[4]

स्पष्ट है कि नागरिक समाज एक पूर्णतया लोकतान्त्रिक व सक्रिय समाज का उपयुक्त पर्याय है। सक्रिय, व जागरूक नागरिकता, स्वतन्त्र व स्वच्छ सावधिक निर्वाचन, स्वतन्त्र प्रेस व जनसंचार के साधन, सक्रिय समूह व आन्दोलन, स्वतन्त्र न्यायपालिका तथा लोगों के प्रति उत्तरदायी शासन इसके अनिवार्य तत्व हैं। इसकी संस्थाएँ हैं संघीय व प्रतिनिधित्वपूर्ण मंच जो कानून के शासन द्वारा रचित वातावरण में रहते व कार्य करते हैं। जबकि यह राज्य को अनुमति देता है कि वह विधि का शासक बनाए रखें, यह आलोचनात्मक या विवेकशील वाद–विवाद के विशेषाधिकार को अपने पास बनाए रखता है ताकि वह निश्चित परिसीमाओं के भीतर अपनी भूमिका को बनाए रखे जिससे लोगों की प्रभुसत्ता का निरादर न हो सके। इसीलिए लोकतन्त्र का सिद्धान्त इसे उदार लोकतन्त्र के अस्तित्व की पूर्व–दशा मानता है। निश्चित रूप में, यही कारण है कि साम्यवादी या फासिस्ट व्यवस्थाएँ, चाहे वे किसी रूप की हों, इसे मिटाने का प्रयास करती है। ''नागरिक समाज लोकतान्त्रिक समाजों व राज्यों की सम्पदा के रूप में उभरता है।.....संक्षेप में, राजनीति का सरोकार संवादों व विवादों से है जो समाज राज्य के साथ करता है। वह क्षेत्र जहाँ ऐसे मुकाबले होते हैं, नागरिक समाज कहलाता है।''[5]

नागरिक समाज एक संवेदनशील विषय है। यह कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे किसी राज्य या औपनिवेशिक व्यवस्था जैसी शक्ति ने अपने लोगों पर थोप दिया हो। यह उन लोगों का जागरूक वर्ग है जो सदैव सावधान रहते हैं, जो अपनी पहचान स्थापित करते हैं तथा जो सामाजिक व राजनीतिक जीवन की परिसीमाओं को जानते है। उन्हें चिन्तन व अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता प्राप्त होती है और इसीलिए वे लोकमत का निर्माण करते हैं। संवाद, विवाद व परिचर्चा की व्यापक गुंजाइश होती है। सूचना का मुक्त प्रवाह उन्हें संघर्ष में शामिल होने योग्य बना देता है और इसीलिए वे अपने शासकों से कह सकते हैं कि उन्हें अमुक सीमा के भीतर रहना चाहिए। अतः वे अपने राज्य को सीमा का उल्लंघन करने से रोक सकते हैं और यदि कुछ परिस्थितियों में ऐसा हो चुका है तो वे नयी या परिवर्तित दशाओं में अपने राज्य को हटा सकता है या कल्याणकारी राज्य को शान्तिपूर्ण या संवैधानिक तरीकों से 'सीमित' या कटौतीयुक्त कल्याणकारी राज्य में परिणित किया जा सकता है। अतः यह उसी सीमा तक रहता है जहाँ तक इसे अपनी आत्म–सत्ता की चेतना है, न कि राज्य के प्रति अपने प्रतिरोध की।[6] फिर, ''नागरिक समाज वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा समाज राज्य द्वारा जारी किए गए सम्पूर्णीकरण का मुकाबला करने का प्रयास करता है।''[7]**केवल इतना ही नहीं, नागरिक समाज आत्म–शुद्धीकरण की विधि से सचेत होता है।** यह उन विषयों या मुद्दों का आलोचनात्मक तरीके से अध्ययन करता है जो उसकी छवि को बिगाड़ते हैं या जिसे उसके सद्स्यगण उत्पीड़न व कष्ट के यन्त्र मानते हैं। पर्यावरणीय प्रदूषण द्वारा हत्याकाण्ड, अस्पृश्यता, श्रम या शोषण, दहेज के कारण मृत्यु, बाल व बन्धुओं श्रम, लैगिंक अन्याय, बलपूर्वक धर्मान्तरण, नस्लीय नरसंहार आदि तुरन्त हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। यह ठीक है कि इन महान दोषों के निराकरण हेतु राज्य अपनी भूमिका निभाता है, यह भी उतना ही ठीक है कि नागरिक समाज यह सहन नहीं करेगा कि उसके सत्ता में मदमस्त शासकगण राज्य को सर्वशक्तिमान बनाकर इन दोषों को मिटाने के लिए उनकी मूल स्वतन्त्रताओं को कुचल डालें। स्वतन्त्र विचार–विमर्श व मुक्त प्रतिवाद के द्वारा खुले रहने चाहिए ताकि चिन्तनशील लोग आगे आकर उपचार हेतु अपने कारगर सुझाव प्रस्तुत कर सकें। राज्य व समाज के बीच मधुर सहयोग बांछनीय हो सकता है लेकिन किसी कट्टरवादी सिद्धान्त का सहारा लेकर छेड़ी गई सांस्कृतिक क्रान्ति जैसी परिघटना नागरिक समाज में कभी नहीं हो सकती।

राज्य व नागरिक समाज के बीच सम्बन्ध गत्यात्मक प्रकृति का है। यहाँ परस्पर संघर्ष के लिए कोई गुंजाइश नहीं है किन्तु यह संवेदनशील भी हैं। माइकेल फोको (Mitchael Foucault) ने दर्शाया है कि किस तरह व्यक्तियों को बलपूर्वक अनुशासित व दण्डित किया जाता है ताकि वे निजी व सार्वजनिक जीवन के नैतिक मानदण्डों के समुच्चय का आदर कर सकें। जैसा कि Neera Chandhokeने कहा है कि ''अब हम राज्य व नागरिक समाज के बीच अन्तर निकाल सकते हैं। समाज का अर्थ हैसार्वजनिक व निजी परम्पराओं व संस्थाओं का समुच्चय जो किसी सामूहिकता के परिचायक हैं। नागरिक समाज समाज का सार्वजनिक क्षेत्र हैं। यह उन प्रक्रियाओं का केन्द्र है जिनके माध्यम से व्यक्तियों व समुदायों के अनुभवों तथा वाद–विवादों, आग्रहों व प्रतियोगिताओं द्वारा उन अनुभवों की अभिव्यक्तियाँ होती हैं। हमारी दूसरी अवधारणा में सार्वजनिक व निजी के बीच या अन्य शब्दों में यह व्यक्तिगत अनुभवों तथा सार्वजनिक अभिव्यक्तियों के बीच, मध्यस्थता है।''[8]

जुर्गेन हेबरमास (Jurgen Habermas) नागरिक समाज व राज्य के बीच इस आधार पर भेद करते है कि नागरिक समाज वह क्षेत्र है जो सजीव जगत के निजी व सार्वजनिक क्षेत्रों के बीच में स्थित है। इसमें कमोबेश वे सभी संस्थाएँ, संगठन व आन्दोलन शामिल हैं जो स्वतः उपजते हैं, जो देखते है कि जीवन के निजी क्षेत्र में किस प्रकार

सामाजिक समस्याएँ उभरती हैं और फिर वे उन प्रतिक्रियाओं को छानकर वृहत रूप में सार्वजनिक क्षेत्र में सम्बोधित करते हैं। नागरिक समाज के विवादपूर्ण प्रतिमानों का संस्थानीकरण करती है, उनके पास संगठन का खुला व समतावादी रूप होता है जिसमें सम्प्रेषण के उन रूपों के अनिवार्य लक्षण प्रतिबिम्बित होते हैं जिसके इर्द–गिर्द उनका जमाव होता है और जिन्हें वे निरन्तरता व स्थायित्व प्रदान करते हैं। विवेक के प्रयोग से ही निजी (गैर–सरकारी) लोग सार्वजनिक (सरकारी) क्षेत्र में पदार्पण करते हैं। नागरिक समाज में परिचर्चा के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण जगह होती है। मनुष्यों के सामाजिक सम्बन्धों को जानकारी की परस्परता की जरूरत हैं जिसे सर्वसम्मति हो जाने पर प्राप्त किया जाता है। सम्प्रेषण क्रिया में गैर–दमनकारी सम्प्रेणात्मक सम्बन्ध समाहित हैं, जो सम्प्रेषण, क्रिया के नियमों के बारे में परस्पर संज्ञान व उनसे लगाव पर आश्रित होते हैं। विधिकता, उजागरता, लोगों की गैर–सरकारी संस्थाएँ, जनता की सांस्कृतिक तथा परिवार नागरिक समाज के मूल तत्व हैं।

साथ ही, यह भी कहा जा सकता है कि नागरिक समाज का प्रतिमान कोई कठोर या कट्टर विषय नहीं है। इसका कोई स्थायी या अपरिवर्तनीय प्रतिमान नहीं बन सकता। समय बदलता है और उसके साथ ही लोगों के व्यवहार तथा उनके मूल्य–आभास बदलते हैं। इसीलिए नागरिक समाज के सदस्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे नई चुनौतियों का सामना करने को सदैव रहें तथा अनुनय–विनय या वाद–विवाद के तरीके से अपनी समस्याओं का समाधान करें जिसे प्रबुद्ध व सक्रिय–सार्वजनिक जीवन की विवेकयुक्त अन्तःक्रिया की संज्ञा दी जा सकती है। ऐसे समाज या अस्तित्व इस अर्थ में बहुत नाजुक हैं कि यह सन्तुलन के टूटने या बिगड़ने की सीमा तक चला जाता है। जैसा पार्कर ने सावधान किया है, ''नागरिक समाज एक क्षेत्र हैं जो राज्य के शासन की शक्ति के सबल रूप में स्वायत्तशासी है और जिसके पास अपनी भीतरी गत्यात्मकताएँ व सम्भावनाएँ हैं। विखण्डन पैदा हो सकता है, जब नागरिक समाज व राज्य के बीच सन्तुलन टूट जाए या नागरिक समाज के भीतर ही महत्वपूर्ण राजनीतिक प्रक्रियाएँ विफल हो जाएँ।''[9]

इस सबके अलावा, नागरिक समाज, जैसा इसके नाम से विदित होता है, समाज के सभी सदस्यों का समुच्चय नहीं है, **यह समाज का एक भाग है जिसमें जागरूक व सक्रिय नागरिक आते हैं।** इसे समाज का सीमित या लघु रूप कहा जा सकता है। इसमें नागरिकता को सामान्य रूप में समाहित नहीं किया जाता बल्कि राजनीतिक नागरिकता को ही शामिल किया जाता है,**यह भीड़ नहीं बल्कि सहभागी जनता है।** अब व्यक्तियों के नागरिक–अधिकारों (जो राज्य की शक्ति पर नियन्त्रण लगाते हैं) तथा राज्य के सामाजिक अधिकारों (जो इसे लोगों के जीवन में किसी भी कल्पनीय सीमा तक हस्तक्षेप करने की क्षमता देते हैं और इस प्रकार उसके उत्पीड़न को उनके जीवन का एक तथ्य बना देते हैं) के बीच अन्तर रेखा खींची जा सकती है। जैसा कि अरस्तु ने कहा है, दार्शनिक अर्थ में राज्य व्यक्ति से पूर्व है लेकिन राज्य की भूमिका के अभाव में समाज ऐतिहासिक विकास या प्रगति की दृष्टि से अधिक पुराना है। किसी विशेष अर्थ में इस राज्य को देखते हुए यह एक विभक्त समाज का विषय बन सकता है कि प्रतिरोध आन्दोलन व्यवस्था के पक्ष या विपक्ष की प्रकृति धारण कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, जबकि पिछड़ी जातियों के लोग अपने हितार्थ सुरक्षात्मक भेदभाव के लिए संघर्ष करते हैं, अग्रणी जातियों के लोग उसी राज्य या देश या समाज में यथास्थिति को बनाए रखने हेतु, आन्दोलन चला रहे हों। नागरिक समाज में प्रतिरोधी आन्दोलनों की अपनी जगह होती हैं तथा समय के साथ मूल्यांकन की प्रक्रिया या उनके आलोचनात्मक विकल्प उनकी वैधता को पुष्ट करते हैं या उसे नकार देते हैं।

इस प्रकार नागरिक समाज की अवधारणा के निम्न निहितार्थ बताये जा सकते है–

- **नागरिक समाज के केन्द्र में सामाजिक अधिकारों का नहीं बल्कि नागरिक अधिकारोंका स्थायीकरण तथा कानूनी व संस्थानिक व्यवस्था के भीतर उनका संहिताबद्धीकरण निहित हैं।**[10]व्यक्तियों के हित में इन अधिकारों की दो तरह से वृद्धि हो सकती हैं–(क) राज्य अपने संविधान में संशोधन करें या (ख) लोग किसी ज्ञापन या अधिकार–पत्र के माध्यम से अपने सामाजिक व राजनीतिक अधिकारों के लिए आन्दोलन चलायें। इसीलिए जीन कोहेन (Jean Cohen)की संकल्पना में नागरिक समाज वह है जहाँ अधिकारों के आधार पर सामाजिक संस्थाओं का आलोचनात्मक उदारीकरण निहित है।

- **नागरिक समाज किसी एकरूपी नहीं बल्कि बहुलरूपी तथा सोपानिक व्यवस्था की कामना करता है।** नागरिक समाज व सार्वजनिक क्षेत्र निश्चित रूप में समकक्ष विचार नहीं है।

- नागरिक समाज के मानदण्ड न तो कठोर होते हैं, न स्थायी, वे सजीव व गत्यात्मक होते हैं और इसीलिए उनका समाज पर निर्णायक प्रभाव पड़ता है जिसे समाज को उलट देना भी कहा जा सकता है। **रीडी** के शब्दों में, ''नागरिक समाज ऐसी चीज नहीं है कि उसे बनाओ फिर उसे कार्य करने दो। यह कोई संस्थानिक व्यवस्था नहीं है। नागरिक समाज की दैनिक रचना व पुनर्रचना होती है। यह एक प्रक्रिया है। नागरिक समाज के साध्य ही उसके साधन है।''[11]

- **इतिहास की नीचे से रचना होनी चाहिए। इसका इस प्रकार विकेन्द्रण होना चाहिएकि उपाश्रयी आन्दोलनों को पूरा महत्व मिले जिनका लक्ष्य सामाजिक असमानता व उत्पीड़न का निराकरण करके नागरिक समाज के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करना है।** सामाजिक व राजनीतिक दृष्टि से उपेक्षित लोगों की दशा सुधारी जाएं जो प्रतिरोधी राजनीति में अहं भूमिका निभाते हैं। नागरिक समाज मानव अधिकारों के बचाव पर खड़ा हैं, भारमुक्त

व्यक्ति इसका सदस्य है तथा उसकी सदस्यता किसी विरासती स्तर पर निर्भर नहीं हैं, यह सभी के लिए खुली है, और इसे नागरिक समाज का आधुनिक रिवाज माना जाना चाहिए।[12]

- **नागरिक समाज के विषय को उत्तर–आधुनिक उदारवादी सिद्धान्त की विषय–सामग्री में लिया जाना चाहिए क्योंकि यह राजनीतिक समाज के क्षेत्र में आ जाता है।** केवल यह जरूरी नहीं है कि सामाजिक गत्यात्मकताओं की पुर्नव्याख्या की जाए, यह ऐसे हर आन्दोलन या दशा से घिर जाता है जहाँ हर वस्तु समायोजित हो जाती है।[13]

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि मुख्य रूप से नागरिक समाज के दो तत्व है। प्रथम, यह एक कानूनी प्रक्रिया है जो स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका को अनुमति देती है तथा राज्य के भीतर ऐसे संघों के सम्बन्धों को इस तरह परिभाषित करती है जो, कम से कम, उनकी स्वायत्ता की प्रत्याभूति करते हैं। यह नागरिक समाज का आधार बनती है और इसीलिए यह उस प्राकृतिक सन्दर्भ के कारण एक राज्य से दूसरे राज्य में बदल जाती है जिसके भीतर संस्थाओं व विधिक संहिताओं का विकास होता है। दूसरे बिन्दु का सरोकार सामाजिक अभिकर्त्ताओं तथा लक्ष्यों से है जिनकी ओर उनकी गतिविधियों निर्दिष्ट होती हैं। स्पष्ट है कि नागरिक समाज की ऐसी अभिमुखता एक समाज से दूसरे समाज में बदल जाती है क्योंकि यह उन मूल्यों पर महत्वपूर्ण रूप में आश्रित होती है जो सार्वजनिक क्षेत्र की गतिविधियों में उजागर होते है। इस सब को अपने ध्यान में रखते हुए **स्कैपहेम** ने कहा है कि ''नागरिक समाज राज्य के बाहर उन सामाजिक संगठनों का समुच्चय है जो एक प्रभावी लोकतान्त्रिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। इस अर्थ में नागरिक समाज की विशेषतायुक्त संस्थाएँ हैं–श्रम, व्यावसायिक संगठन, स्वतन्त्र मीडिया एवं अन्य सूचना केन्द्र तथा अन्य सामाजिक व आर्थिक समूह जो समाज के विभिन्न भागों को एक दूसरे से जोड़ने में सहायक होते हैं।''[14]

यह कहना भी उपयुक्त होगा कि ऐसी संस्थाओं की संख्या उनके स्थायित्व के अलावा, एक स्वस्थ नागरिक समाज के लिए यह भी आवश्यक है कि वे परस्पर–विरोधी हितों या दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व न करें।

❖❖❖

संदर्भ सूची :–

1– John Gray : Liberalism, p. xi.

2- डॉ पुखराज जैन, और डॉ0 एन.डी. अरोरा, ''राजनीतिक विज्ञान के सिद्धान्त'' पृ0–312.

3- Stuart Hall : The State in Question in Gregor Mclennan, David Held and Stuart Hall (ed.s.) : The Idea of the Modern State, p. 21.

4- A. Gouldner : "Civil Society in, Capitalism and Socialism' in his ed. The Two Marxisms : Contributions and Anomalies in the Development Theory. P. 371.

5- Neera Chandhoke : State and Civil Society, pp. 371.

6- J. F. Bayart : "Civil Society in Africa in P. Chabal (ed.) : Political Domination in Africa : Reflections on the Limit of Power, p. 117.

 Ibid, p.111.

7- Neera Chandhoke :State and Civil Society, op. cit. 168-69.

8- Noel Parker : Revolutions and History, p. 161.

9- Neera Chandhoke : State and Civil Society, op. cit. 204.

10- D.A. Reidy : 'Eastern Europe : Civil Society and the Real Revolution' in Praxis International. Vol-12, 2, July 1992. P. 173.

11- J. Cohen : 'Discourse on Ethics and Civil Society' in Philosophy and Social Criticism No. 14, 1988, p. 325.

12- E. Laclau : New Reflections on the Revolution of Our Time.

13- C. Clapham : Third World Politics, p. 207.

14- Ibid., p.111.